मालकौंस

मूल्य तीस रुपये (30.00)

संस्करण 1985
राजपाल एण्ड सन्ज़ कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006 द्वारा प्रकाशित
MAALKAUNS (Poetry) by Anant Kumar Pashan

मालकौंस

अनन्त कुमार पाषाण



राजस्थान प्रकाश भवन

उस्ताद बब्बन को
जिनकी
गज़ल की अदायगी
लाजवाब
है।

सगीत-समारम्भ के पूर्व
(भूमिका-स्वरूप)

यह कविताएँ जिनमे से शायद कुछ आप पढें और जो पढें उनम मे शायद कुछ आपको पसन्द भी आय मरी व्यक्तिगत अनुभूति और सवेदनशील स्मृति की उपज है। इन्हे लिखते हुए कभी सोचा भी न था कि यह छपेंगी भी। और अब जब यह छप ही रही है तो मुझे इसका बिलकुल अनुमान नही है कि यह प्रयोगवाद के अनुकूल हैं या प्रगतिवाद के प्रतिकूल हैं सत्तरोत्तर कविता मे इनका कही कुछ स्थान है, या इनम छायावादी शैली का पुनरुत्थान है। परम्परा की पुष्टि करती है कि परम्परा को चुनौती देती है।

परम्परा किस कहते हैं और वह अपन मे अलग कुछ है या अपने ही भीतर आत्मसात पुरखो की रीति है यह बहुत कठिन प्रश्न है। सगीत के इतिहास में तानसेन से सम्बन्धित एक कथा है। उनका लडका विलासखान बाप से [illegible] सीखता था मगर उसकी अदायगी एकदम अलग थी। गुरु जब बाप हो और [illegible] और लोकविश्रुत हो तो ऐसी स्थिति कितनी सत्रासदायक हो सकती है [illegible] अनुमान लगाया जा सकता है। इस बात को लेकर पिता और पुत्र [illegible] गरमागरमी होती थी और पिता झल्लाकर यह भी धमकी देते कि [illegible] दिन से पुत्र को नही सिखायेंगे। मगर फिर सिखाने बैठते और [illegible]। पुत्र की स्वाभाविक अदायगी ही अलग थी। तानसेन [illegible] मारते, चिल्लाते और कभी-कभी रोने तक लगते।

ऐसे होते-होते वह दिन आया कि तानसेन [illegible] पर छोडकर भगवान को प्यारे हो गये। विलासखान [illegible] दोनों आखो से अनवरत आँसू बह रहे थे। [illegible] करके विलासखान ने टोडी राग गाया जो [illegible] हो गया। सबने आश्चर्य से देखा कि [illegible] जीवन मे वह कभी मुस्कुराये न थे

अपने पिता, दादा, परदादा, [illegible] आप लोग आशीर्वाद दें कि उन्हें [illegible]।

सवाल उठता है, कि यह [illegible] वही दे सकता है, जिसने [illegible] तीव्र और कोमल स्वर [illegible] महफिलों से आती तालियों [illegible]

को दुशाला डाले अन्दर बाहर आता-जाता देखता हूँ तो हाथ पैर ठंडे हो जाते हैं। इधर एक मनचले संगीतकार ने तो यहाँ तक कह डाला कि संगीत गाने की नहीं पढ़ने की चीज़ है, और वह पठ्य परम्परा का प्रथम आचार्य है।

हो सकता है। कुछ भी हो सकता है। मगर मैं, जिसका संगीत का ज्ञान सीमित है और जो उस्तादों के सामने अपने को तानपूरा मिलाने के योग्य भी नहीं समझता, क्या कह सकता हूँ। सिवाय इसके कि आज संगीत पढ़ने की चीज़ है तो कल देखने की और परसों गिनने की चीज़ भी हो जायगा। कला वत्सला है। हिन्दी के जिस घराने के संगीतकारों के कारण यह घराना अंग्रेज़ी और अन्य घरानों से अलग है, वे संगीतकार तो बोलने, पढ़ने और गाने को तीन चीजें समझते थे। हिन्दी के घराने में एक ऐसा नेत्रविहीन उस्ताद हो गया कि उसका गाना सुनने स्वयं भगवान आकर बैठते थे। यह बात इतनी लोकमान्य है कि कलडरों पर और छपी हुई तसवीरों पर यह दृश्य कई बार अंकित हुआ है। दूसरे उस्ताद ने ऐसा संगीत बनाया कि अनपढ़ गंवार लोगों की ज़बान पर चढ़ गया और यद्यपि उन्हें नोबेल प्राइज़ नहीं दिया जा सकता, मगर योरोप की महफ़िलों में उनके सुरों की धाक जमी। मीरा रानी थी और इस संगीत को गाकर अपने ही राज की गलियों में वह नाची। एक ऐसा संगीत का भूषण भी था कि जिसके संगीत को सुनकर देश के वीर रक्षक ने आततायी के छक्के छुड़ा दिये।

और जायस गांव का रहनेवाला बेचकर और काना वह किस्सागो, जिसकी नायिका के विरह से गेहूँ का हृदय हमेशा के लिए फट गया और तोते के गले में जब उसने अपनी पाती बांधी तो तोते के गले में नील पड़ गयी।

मगर यह तो बहुत ही पुरानी बात है। उसके बाद तो हिन्दी के घराने के अंदाज़ कई कई तरह से बदले। कितने ही नये ठाटों पर गत-आलाप ईजाद हुए। इस घराने ने शुरू से ही सनातन धर्म की ही तरह विश्व के अधुनातन अन्दाज़ों को आज़माकर अपनी सनातनता सिद्ध की।

जब समुद्रपार के कुछ बेपारी यहाँ आये तब फिर नये सिरे से राग रागिनियों का शृंगार किया गया।

कभी तो छाया की वादियों में से नवीन पल्लव चुने गये, अनजाने परिमल को पकड़ा गया झरने पर खड़े होकर लहर को देखा गया—तुमुल कोलाहल-कलह में हृदय की बात को सुना गया

कभी मदिरा, मोमिन पादरियों के फंदों को काटकर पाठक को मेहंदी-रंजित मृदुल हथेली से माणिक मधु का प्याला लेने का निमन्त्रण दिया गया

फिर एक दौर ऐसा भी गुज़रा कि मसागाड़ी की चूं चरर-मरर में ही सातों राग सुनायी पड़ने लगे। छाया की वादियों में घूमते लोग खुद एक नवाब के उगाये गुलाबों में उस कुकुरमुत्ता को देखने लगे, जो उगाये नहीं उगता। पलाय-

वन की खोज के बाद मिट्टी और फूल का सम्बन्ध समझा गया। प्रवासी कवि प्रिया के लोचनो मे छायी सोने की गुलमार तो पहले ही देख चुका था।

फिर बम बनाने वाले महफिल मे घुस आये जिन्हे चिन्ता हुई—"हाय, वह प्रतिदिन पराजय दिन छिपे के बाद।"

फिर तो वह हगामा मचा, वह सितार टूटे, वह तबलो को फाडा गया कि सगीत भाग कर किवाड के पीछे छिप गया। किसी ने कहा भी कि अब तो नूतन गीत पुराने-से लगते हैं। किसी ने कहा कि ऐसा सगीत बजना चाहिए कि भारत-माता सोते-सोते उठ खड़ी हो। किसी ने कहा कि भाव को छोडो, अभाव की बात करो—विचार ही सगीत है। किसी ने सगीत को असगीत और सगति को असगति बनाने का ही सकल्प कर डाला । इधर शास्त्राथ चलते रहे और उधर जनता चिल्लाती रही—"कोई दिल की चीज सुनाओ उस्ताद, जसे तुम्हारे उस्ताद सुनाते थे।"

इसपर एक विद्वान ने गुस्से म कहा—"दिल किसका ? तुम्हारा या हमारा? पुराने उस्ताद गाने को सगीत समझते थे। हमारा सगीत पढने के लिए है और उसके प्रथम आचाय हैं हम! आधुनिक बनो! प्राचीन उस्तादो को भूल जाओ!"

मगर आधुनिक कसे बनें ? शहर का वणन करके ? तो क्या कालिदास ने रघुवश मे अपने समय के शहर का अविस्मरणीय वणन नहीं किया ? स्पेंसर ने लदन को अपनी धात्री बताया। बायरन ने 'चाइल्ड हॅरल्ड' मे ससार के प्राय सब शहरो का उदात्त वणन है।

औद्योगीकरण पर लिखकर ? क्या मनुष्य द्वारा निर्मित वस्तुओं पर लिखना आधुनिक, और प्रकृति द्वारा निर्मित सृष्टि पर लिखना पुरातन ? यदि भिखारी की मरी हुई लडकी पर शोकगीत गाये तो प्रगतिशील, और किसी करोडपति की तीसरी मजिल से गिरकर मर जानेवाली इकलौती लडकी पर लिखें तो प्रति-क्रियावादी ?

क्या यौन की निलज्ज स्वीकृति ही आधुनिकता है। ऋग्वेद म आर्यों ने स्त्रियो के अभाव मे अपने को ऐसे मेढक बताया है जो वर्षा के अभाव मे सूख रहे हैं। उल्टा-सीधा रहस्यमय लिखना आधुनिकता है ? हमारे घराने मे कूटपदो और उलटबासियो की कमी है ! नयी भाषा ? कबीर ने माया को रमय्या की जोरू बताकर उससे ससाररूपी बाजार लुटवाया है। क्या विदेशी अदायगी से सीखना आधुनिकता है ? तो यह तो हम हमेशा से करते आये है। सितार तो ईजाद ही एक विदेशी ने किया। खयाल मे गाने की प्रणाली ही विदेशियो ने विकसित की। हमारी सारी चेतना ही अविभाज्य मानव-चेतना की स्वीकृति है। महाप्रभु चैतन्यदेव का अत्यन्त प्रिय शिष्य एक पठान था।

मालवे के आचलिक प्रदेशो मे बीते हुए शैशव मे मैंने बहुत कुछ अपनी झोली मे भरा—नर्मदा के गीत, चम्बल की चीत्कार, महाकाल के मदिर म होता

घण्टानाद, ओंकारेश्वर की पावनता, ग्वालियर में मिले घर मुनी हवाओं की आवाज़, चौरन की घाटी की गहराई पलाश के दहकते जंगलों की आग, गरमा के मीलों फैले खेत और सबसे अधिक अमलतास के घने जंगलों से बटोरा गाना

अदायगी कुछ अपने पूर्व में उस्तादों से सीखने की कोशिश की, यद्यपि कच्चा ही रहा। कुछ खेतों में गाते किसानों से, कुछ शहर में राजे के दिनों में रहे सवेर आते फ़कीरों से, कुछ मेलों में, कुछ भीलों से, कुछ पक्षियों से और कुछ हवाओं से

जानता हूँ कि गाना नहीं आया मगर जब भी जीवन में अकेले पथ पर अंधकार बढ़ने लगा तब गाया। आप यह मत कहें—"बिलग साथियों में ही कोई पथिक सुना, गाता आता है।" शायद जब आप अकेले हों, साथियों से बिलग हो जायें और अंधेरा बढ़ने लगे तो यह गीत आपको आश्वासन दे सकें। शायद आपको एहसास हो कि अंधेरा तो जीवन का एक अंग ही है और उसे दूर करने का उपाय ही गीत है। सबकी सड़क सुनसान है मगर एक गीत की आवाज़ उठने से और सन्नाटा से भी उस आवाज़ का उत्तर आयेगा। शायद अपने बिलग हुए साथियों की ही आवाज़ हो।

घोर निराशा और अदम्य आस्था, दीवानी मोहब्बत और बेवफ़ाई, तरुणाई के स्वप्न और वृद्धावस्था का चिड़चिड़ापन, भयंकर विप्लव और अटूट शांति—सब मिलकर ही जीवन है। हमारे सुख-दुख आशा निराशा एक हैं।

'लौटा सिंदबाद' नामक अपने प्रथम संग्रह में मनुष्य के जीवन की जलयात्रा का रूपक रखकर मैंने स्वयं उस सिंदबाद जहाजी कहा था और जहाज लेकर निकलने से शुरू किया था। सौन्दर्य वह रहस्य है जो सदा से निर्भेद्य है और सदा रहेगा। यह ओझल होकर भी सामने है और सामने होकर भी ओझल है। कोई एक तेवर कोई एक अन्दाज़, कोई एक दृष्टिकोण जीवन का खंडन है। यहाँ न्याय और अन्याय का युद्ध जब शुरू होता है तो दोनों ही पक्ष अपने-अपने ढंग से प्लास्टिक सर्जरी करके सत्य की शक्ल बदलने की कोशिश करते हैं।

केवल काल का प्रवाह सत्य है। उसमें बहता हुआ सब, यदि वह बहाव के साथ स्वीकृत हो। बीच में टापू भी हैं, सफ़ेद बादलों के प्रतिबिम्ब, तट पर की सैकत—सब एकसाथ हैं। महाभारत निरन्तर है। धन्य है द्रौपदी, जो महाप्रस्थान में सबसे पहले गिरी। धन्य है धर्मराज, जो अकेले ही चलते चले गये। दुर्बलता से ही महानता विश्वसनीय है और महानता से ही दुर्बलता ग्राह्य। भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा—"यह लोग बिना तेरे मारे भी विनिष्ट हो जायेंगे। तू केवल साधन बन।"

इस संग्रह में कहीं मींड, कहीं झाला कहीं गत मिले, कहीं कोई स्वर आलाप का हो, कहीं द्रुत में गाने से आपका विनोद हो, तो आप समझें कि सितार निर्जीव है, साधन है उसमें जीवन डालनेवाली उँगलियाँ किसी और की हैं।

मगर सितार को एकदम न भुला दें। साधन का भी कुछ महत्व है।

—अनन्त कुमार पाषाण

क्रम

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रांगण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आई, लावण्य भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौंस नव वीणा पर

—'निराला'

कौन ये हिमालयों के कंठ में
प्यासा मालकौंस भर गया है
बोल उठी पास की तराइयाँ
नदियों का आचरण नया है

—वीरेन्द्र मिश्र

मालकौंस

मेरे सोने के कमरे की
खिड़की के बाहर का सिरीष
हर रात पूछता है मुझसे—
'जो कंठ कभी इस कमरे में
थी मालकौंस गाया करती,
वह कहाँ गयी ?'

यह करवट लेती कुछ चिड़ियें,
यह रुक-रुक कर गाती झिल्ली,
ऊपर फानूस और नीचे
यह बिछा हुआ कालीन लाल—
सब जैसे कोई और यहाँ है
ऐसे स्वयं पूछता मैं—
'वह कहाँ गयी ?'

फानूस झूलता मारुत में,
नभ ज्योतित होता विद्युत में,
खिड़की से कोई गुज़रता है
जाते-जाते यह कहता है—
'वह राजदूतिका थी भविष्य की,
चली गयी है अपने घर ।
जाने के पहले लेकिन कवि,
यह कविता में अक्षर-अक्षर
को मालकौंस की नव अदायगी
सिखा गयी !'

1983

वह महकती शाम

साँवली-सी साँझ की झाँई—
कि लेकर कई मेंहदी के महकते फूल के गुच्छे
बुलाती नाम मेरा
तुम चली आयी।

बहुत हलकी जामनी साड़ी
लाल जिसका बहुत चौड़ा पाड़,
गुलाबी जाड़ा, ठिठुरते-से खड़े सब झाड़।
चैस्टर एक पहन पट्टू का
बुलाती नाम मेरा
तुम चली आयी।

पेड़ सहजन के वहीं कम्पाउण्ड में
बहुत-से थे, सभी फूलों से भरे थे,
हर्ष की सब भावनाओं को
बजाती तुम गतें आयीं।

सजी-सी थी, बजी-सी थी,
वह पुरानी चीज़ फिर संगीत की
मानो हुई साकार—
'ऐसी छबीली नार कर कर सिंगार!'

महकती वह शाम, मेरा नाम
मालकौंस मुझको बुलाने आ गया बन प्यार!

मन-महल

तुम दो क्षण को मुझको
अपनी मिज़राब बना लो।

वह किन्नर कोमल अंगुलियां
जब तारा का कण्ठ जगा दें,
पश्चिम में आकण्ठ डूबता
एकाकी रवि अश्वारोही
जो कहता है प्रतिदिन वोही
वह— राग से आग बुझा दो।'

मालकौंस जिसको गाने से
कोई राही खोया वन में,
पेड़ तले सो गया, जगा तो
महल खड़ा था उसके मन में।
उसी महल में था अलिन्द वह
बजा रही जिसमें सितार थी,
और क्षितिज तक केवल सागर
था—लहरों में
राही कभी डूब, उतराता
था—लेकिन
यह ही चिल्लाता—
था—
'तुम दो क्षण को मुझको
अपनी मिज़राब बना लो।'

1983

बाती की वेला

हुई दिया-बाती की वेला,
ईंटों का घर पत्थर का हो,
बना अकेला।

द्वार-द्वार पर कोई डरता-डरता
दस्तक देता,
तुलसी के चौबारे पर जा
रखकर दीप
सहन से होकर
पीपल के नीचे देवी के सम्मुख
गुड़हल रखता,
हाथ जोड़
मन-ही-मन में
कुछ कहता है
आहिस्ता
आहिस्ता।

फिर गंगा में ऊँचाई से कूदा कोई
ऐसा लगता,
रह जाती है फिर नीरवता!

घाटों पर सुनसान खड़े हो
ऐसा दिखता—
कुछ सफेद-सा दूर बहा जा रहा
डूबता और उतरता
निपट अकेला—

ऐसे ही अब रोज़ यहाँ पर
होती है बाती की वेला।

198:

सुनो सुजाते

एक बार बस एक बार ही
नरम धूप में सुबह-सुबह की
भूले हुए दिनों की फिर से
सारी गतें बजा दो।

याद-याद पर मींड खींच दो
नीले नभ में घन रुक जायें,
दीर्घ यन्त्रणा दीन हृदय की
तारों में रम गा दो।

देख एक-दूसरे को हम
बिलावजह हँसते रहते थे,
तेज भागते भाव सकल वह
द्रुत में ला झाला दो।

शिशिर समीर पत्र कुछ पीले—
ओसधुले जो सोनल उजले
लाकर बरसाय सितार पर,
तुम वसन्त फिर ला दो।

मालकौंस वह चले मलय-सा
ध्यान न समय और असमय का,
सुनो सुजाते, चन्दन-तरु को
इस मन के महका दो।

1983

घर छोडते हुए

घर छोडकर निकलते ही
सामने की सडक पर शरीफेवाला बैठा मिला,
याद आया।
बचपन में शरीफे के बीजो से मुह भर आता था।

फिर भी दुखी नही हुआ।

पुल चढकर उतर गया—
याद आया
पुल पर सध्या को सरकती धूप के
साथ-साथ भागकर हम उसे पकडते थे।

फिर भी भावुक नही बना
एक बक्स, एक बिस्तर
यत्रवत रेल पर चढ गया,
इतना ही सामान लेकर एक दिन इस शहर में आया था
कसे नये घर मे जा उसको सजाया था।
बीच अहाते में एक कचनार लगाया था।

फूलो के आने पर
एक दिन उसके नीचे दरी पर बैठ तुमने
मालकौंस गाया था

आख में अनायास आँसू आ, भर गया।

आश्चर्य

कई सुबहों को दालानों में
खंभे के लम्बे साये से
टिका तुम्हारा साया देखा।

कंधों तक वे केश तुम्हारे
किंचित कम्पित थे समीर में
काले नयन बड़े कजरारे—
तुम्हें पास ही आया देखा।

मिला तानपूरा जब तुमने
मालकौंस को मूर्त किया था,
थोड़ा रुक अपने पल्ले से
होंठों के ऊपर जैसे कुछ
स्वेद बिंदु-सा पोंछ लिया था।

नारंगी जंगली फूलों को
हाते से मैं चुन लाया था
और तुम्हें नारंगी रंग से नहलाया था।

आज सुबह उठकर तरु-तरु पर
परिचित नारंगी फूलों को
मैंने ज्यों खिल आया देखा।

1983

झाला

याद है, संगीत की महफ़िल, जिसे हम छोड़कर उस रात
बाहर आ गये दालान में थे,
कुछ मेंवें ऊपर हुई थी, पर लड़कपन
समझकर बर्दाश्त सबने कर लिया था।

तारकों की छाँव में काँटाभरी कुछ झाड़ियों से
फूल नारंगी मनोहर चुन अँधेरे में भरे दामन
तुम्हारे पास वापस आ गया था।
सुई भी जाने कहाँ से मिल गई थी,
एक अनगढ़-सा बना गजरा तुम्हें पहना दिया था।

फूल तब बेला रहा था
और अनबोला बहुत कुछ
वन्य-सौरभ-सा पवन में भर रहा था,
और झाले में मधुर द्रुत
मालकौंस सितार पर तब बज रहा था।

और तब से
वही मनकर राग जीवन बज रहा है,
किन्तु क्रम उल्टा हुआ है
क्योंकि झाला जोड़ के पश्चात कब का बज चुका है,
और वही राग तब से विलम्बित में बज रहा है।

चतुर लोग

तब हम दालान में
सरकंडे के मोढ़ों पर बैठकर
एक दूसरे को क्या-क्या चिढ़ाते थे—
था लड़कपन

किन्तु हम दोनों अकेले तो नहीं थे
साथ दो परिवार थे,
जो कि बहुमें लड़कपन को ठीक रखने को
सिपहसालार थे।

बहुत भोले थे, मगर हम
था हमें उनमें बहुत विश्वास,
सभी अपनी बात हम उनको बताते थे,
पत्र भी अपने सभी उनको पढ़ाते थे।

सफल हमको अलग करने में हुए वे
दूरियों पर जा पड़े हम,
चतुर अपने को समझकर वह बहुत ही खुश हुए थे।

मगर अब?
दूर रहकर भी बहुत ही उल्लसित हैं मन हमारे!
और वे पीड़ित बहुत सन्त्रस्त हैं
ज्यादा चतुर हैं,
मगर घबराते बहुत एकान्त से हैं,
रात को भी सो न पाते हैं,
बहुत करके यत्न भी वे रो न पाते हैं!

नज़रकैद

शहज़ादी,
यह तो हम समझ गये कि हम नज़रबंद हैं,
मगर यह नज़र तो हर गजर
बदलती ही नज़र आती है।
कभी जब लगता है दिन है रिहाई का
कैद की मियाद और बढ़ जाती है।

माना इस खिड़की से दिखते हैं
दूर सिंधुबीच खड़े किले, फूल बालू के,
सामने पहाड़ों पर नीचे झुक आते हैं
बादल, भाग जाते हैं पहाड़ों को छू के।

मगर हर रोज़ खिड़की खोलने के बाद
दृश्य क्यों बदल जाता है ?
जहाँ समन्दर था वहाँ एक बहुत बड़ा
फैला शहर नज़र आता है।
शहर में सैकड़ों आदमी चिमटे ले
जैसे किसी दरगाह पर कव्वाली गाते हैं

वक्त-बेवक्त जैसे मेरे ही भीतर कहीं
मुअज़्ज़िन अज़ान की आवाज़ लगाते हैं।

1983

तीन जन

नदी की रेत पर
पानी से अभी-अभी निकले ऊदबिलाव की
धूप म चमकती मूछें देखने के बाद
वह छोट-छाट पीले फूलो से लद
बबूल के जगल पार कर
अपन लाल खपरैल और हरी जाफरीवाले
मकान मे लौट आया।

दरवाजा खोलने के बाद
किसी नारी-कठ ने दबी आवाज से
पूछा था
"कौन ?"
हालांकि वह अकेला रहता था।

बरामदे का हरा लकडी का दरवाजा
खोलकर
किसी के बाहर निकलने की आहट हुई थी,
और उसने सहमी आवाज मे पूछा था—
"कौन !"

वहा तो कौन था ?
कहने को तीन जन—
मानव तन, मानव मन,
और सनसन पवन !

1980

सामान

मैं रोज सब सामान बाहर निकालकर
देखता हूँ—
कोई ऐसी चीज तो नही
जो घर बदलने मे छूट गयी !

याद आती है
कई फालतू चीजें जिन्हें छोड आया था,
राहत थी।
नये मकान मे सामान लगाते हुए पाता हूँ
उन्ही चीजो को दो-दो चार-चार की सख्या मे
मैंने फिर जमा कर लिया है।

मकान बदलने से
या चीजें छोड देने से
कभी नही छूटती
क्योकि वह आदमी के अन्दर होती हैं—
जब खो जायें तो मिल जाती हैं,
जब पा जाओ तो खोती हैं।

1980

शलभ

जिस दिये का मैं शलभ हूँ,
उसकी रोशनी हर झरोखे में है।

जहाँ कहीं ताज़े गोबर से लिपी कच्ची धरती पर
महावर से रँगे पाँव हैं,
वहाँ भी जहाँ पलकों के साये में
याना के गाँव हैं!
और उन झरोखों में भी
जिनके पीछे सिर्फ मरे हुए सवेरे हैं,
और उन झरोखों में भी
जिनके पीछे सोये बूढ़े अँधेरे हैं।

जिस रोशनी में पाँसे फेंके जा रहे हैं,
और जिसमें
सिक्के गिने जा रहे हैं,
जिस रोशनी को लगाकर ठेले निकलते हैं,
जगह-जगह जिसे जला मेले लगते हैं

मगर रोशनी हमेशा उसी दिये की है
जिसका मैं शलभ हूँ
मौत के पर्दों में छिपकर भी
जीवन में हर मन की धड़कन में
सुलभ हूँ।

1981

उत्सव की प्रतीक्षा

अयि राजकन्ये,
जब तक तुम्हारे पण्य-पोत लौटेंगे,
रागिनियाँ वापस जा
तारों में सो जायेंगी ।

दूर-दूर द्वीपों से
उत्सव के उपकरण
तुमने मँगाये हैं,
दुर्ग के चारों ओर
शिविर लगवाये हैं ।

पोतों की पाँत अश्वों की
बँधी है प्रतियोगिता को—
सम्मान पूरा मिलेगा
शास्त्रार्थ, कविता को

किन्तु उस दिन के आने तक
मैं न ठहर सकूँगा ।
जाने के पहले अपने हाथों से
दुर्ग के द्वार पर
सेलखड़ी लेकर यह लिखूँगा—
"अनिश्चित जिस देश में सम्मान हो,
कौन फिर उस देश का मेहमान हो !"

198

यह तो अपने हैं

लाल छोटी चिड़िया, फूल जंगल के बहुरंगी
अपने हैं।

कविता का युग न रहे बौद्धिकता प्रधान हो,
बात का कहने की रीतियाँ बदल जायें,
मिल से निकलता धुआँ गगन काला करे
आकर बरामदे में बोलती मैंना के
गीत शाम्मीभरे
अपने हैं।

गरमी में पहाड़ों पर चाहे न जा सकें,
छोटे से कमरे में उबलें पसीने में,
उस छोटी खिड़की से दिखते हुए सेमल के
लाल-लाल फूलों से लदे वह कँटीले पेड़
अपने हैं।

प्रेम मिले या न मिले, नीरस एकान्त हो,
पानी भी देने का कोई पुरसानेहाल
अपना न मीत हो,
इधर-उधर होटल की मेजों पर रखे हुए
मोटे-मोटे गिलास पानी के
अपने हैं।

1974

तरुओ-नीचे हँसनेवाली

तरुओ-नीचे हँसनेवाली
अब तक यह वन महक रहा है।
सुरभित आचल लहराया था
जहाँ, वहाँ खिल रही मौलश्री,
ऊष्ण पवन तन कम्पित करता,
रोम-रोम म घुलती मिश्री।
बिना बात के हँसनेवाली,
अब तक कानन चहक रहा है।
लौट रहे रवि के रथ-चक्रा
के तुम चिह्न मिटाती, हँसती,
कभी धूप बन वन उजासती,
उमड मेह बन कभी बरसती।
बन मधु-मेघ बरसनेवाली
अब तक जीवन बहक रहा है।
चीर धूसरित सध्या का वन
उतर गयी उस ओर काल के।
जाते-जाते मुझे दे गयी
ककण निज कर से निकाल के।
अनछूए होठो की सुधि से
अब तक यह तन दहक रहा है।

सगाई

पहाड़ों पर चढ़ने चढ़ते
तुम्हारा गजरा ढीला हो गया,
स्वेद से दमकता चेहरा है,
आँखों पर संयम का पहरा है।

आँचल में मंदिर की सीढ़ियों के नीचे से
मेहँदी के फूल बाँध लायी हो
मेहँदी की पत्तियों से हथेलियाँ जलती हैं।
मजा तभी आयेगा—
जब पलाश रंगकर
तलवों में ललाई हो।

देह बड़ी थकी है, भीतर अग्नि थमी है,
क्षण यह आ गया है—
तन को पुरोहित बना
आत्माओं की सगाई हो।

1978

तकाज़ा

यह दरवाज़ा जिसे तुम हमेशा खुला देखते हो,
सदियों बन्द रहा था

एक बार उसने जाने के लिए खोला था
जिससे मैंने कुछ देर और रुकने की ज़िद की थी,
फिर भी वह चल दी थी,
और उसके बाद से
दरवाज़ा यह खुला का खुला है।

और मैं इसमें खड़ा हूँ—
मकान ढह गया है
पर दरवाज़ा खड़ा है,
जैसे वायदा भूल गया है,
पर उसे निभाने का
तकाज़ा खड़ा है।

नागिन

इन गुंजान वनों में नागिन
एक सुनहली रहती है।
बैठ चट्टान पर
सहसा गड़रिये का गीत वह गाता है,
टूटी हुई मसजिद से
चमगादड़ उड़ जाता है

बूढ़ी जवानी सुधि के चिथड़ों की पोटली
कांख में दबाये,
कभी-कभी आती है,
पोटली पर सिर रख
कभी सो भी जाती है।

मगर नींद से उठकर
मौन वह रोती है,
दूर के पहाड़ों में
जब प्रतिध्वनि होती है—
इन गुंजान वनों में नागिन
एक सुनहली रहती है।

1979

चाभी

कड़ी धूप में भुनता,
लू की चीखें सुनता,
बरगद के पेड़ के
नीचे बने इस घर में आकर सुकून हुआ।

दरवाज़ा खोलकर
कमरा-दर-कमरा जा,
अपने पुराने पहचाने मकान में
अपनी ही साँस सुनी

कपड़े सब उतार दिये
मिट्टी की काली नाँद के पानी से
नहाना शुरू किया,
सिहरन-सी उठते ही
गाना शुरू किया।

सहसा याद आया—
दरवाज़ा खोलने के बाद
चाभी मैं उसी में लटकती छोड़ आया हूँ।
सारे घर को पानी से भरते हुए
नंगे ही भागकर बाहर आया!
और फिर याद आया—
वापस इस मकान में आने का
इसीलिए अधिकार मिला है
कि चाभी खो चुकी है!

गुलाब

कहने से भी क्या फायदा ?
कहेंगे भी तो मानेगा कौन
कि हमने भी एक बार
प्यार पाया था

एक गीत गाया था,
सिर्फ प्यार देनेवाले ने
सुना था,
और उस महफिल मे
किसी को पता न था !

आज हमे कहना पडा—
जब तुमने कागज का एक गुलाब
दिखाकर दावा किया
अपने मन के उपवन से तोडा है,
और उसने कई दिन
तारो की छाँव म, सपनो के गाँव मे
ओस पी,
सूरज से, तारो से रँग लिया है।

माना यह गुलाब-सा हूबहू दिखता है,
इत्र गुलाब का इसमे बसा है,
बहुत दिन रहेगा, ताजा-सा दिखेगा
लेकिन किससे कहूँ ?
हमने भी असली गुलाब देखा है !

1983

महफ़िल के बाद की रात

तुम्हारी सुराही खाली हो जाने पर
यार लोग जाम भी लेकर चल गये।
छूट गये कालीनों पर
कुछ गुलाबी धब्बे,
और हवा में उड़ते
कुछ मसले, कुछ कुचले
बेला के फूल।

तुम भी यार बड़े भोले हो।
महफ़िल का यही रिवाज है
जब तक घुंघरू है,
सभी सब साज़ है,
फिर तो बुझते-बुझते
दिये हैं, ऊँची छत है,
सिमटी हुई चाँदनी से ढका हुआ तख़्त है।
और एक रात है—

'जानेमन मुबारक,
सिर्फ़ मुझे पता है
जिन अंगूरों की शराब
तुमने सिर्फ़ अपने लिए छुपा कर रखी है,
वह मेरे बगीचे से
चुराए हुए हैं।'

हेमन्त-पावस

रात दिन संकट के बादल गरजते हैं,
छन छन मे बिजली चमकती है,
आँगन की तुलसी और नीम दरवाजे का
सुलग-सुलग उठते हैं।

टूटे हुए धीरज के पुराने मकान पर
जगह-जगह टूटी है सुधियो की छाजन।
किसको मालूम था हेमन्त के बीचोबीच
झरते हुए पीले पत्तो के बदले
होगा प्रलय-वपण।

सपनो के मरघट मे
मरे हुए साहस का व्याघाम्बर पहने
किसी पगली भैरवी-सी
आशा है घूमती,
मदिरा पी त्रास की
डगमग झूमती।

घर मे अँधियाला है, मचिया पर कविता की
शब्दो की गठरी को सिरहाने लगाकर
कवि निपट अकेला पडा है,
दुःख के झीगुरो से गुजित है सारा घर,
रातभर बोलते यह रहते हैं निरतर,
और दरवाजे पर
एकाकीपन का बडा
ताला जडा है।

1981

लुटेरे

वे फिर आ रहे हैं, वे फिर आ रहे हैं
शस्त्रों से लैस, लूटपाट करने
लुटेरे समय की सेना के डाकू
सैंकडों-हजारों ले चमकते चाकू।

फिर नदी पार करते हुए
विश्वास के घोडे पर चढी जवानी
को ग़फलत की नदी में काट फेंक देने,
वर्षा से धो देने तन के कागज पर लिखी
सुन्दरता—कविता,
फिर झुलस देने फुर्तीले हाथों की
तत्परता
दिनों के घोडों पर सवार सबल सेना।
व्यर्थ है कहना-सुनना, रोना या धोना।

लो, वे जा रहे हैं, लो, वे जा रहे हैं—
फेंक कर लूटा हुआ बालों का कालापन,
अंग-अंग का यौवन,
प्रेम की आस्था, विवशता, भोलापन,
ऊँचे आदर्शों पर जिया मानव-जीवन,
मोहित शहीदों का
कल्पित स्वप्न-आलिंगन।

देह की कारा

ऐसा लगा, अचानक घाटी
फूलों से लबरेज़ भर गयी।
चलते-चलते रुकी अचानक
फूल उठाने पृथ्वी पर से,
पायजेब की सीत्कार से
लगा कि जैसे जलकण बरसे।
चढ़ते चढ़ते गिरिमाला पर
सुरभि श्वास में तेज़ भर गयी।
लकदक नीले आसमान में
पर्दा हटा तनिक-सा घन का
हमें देखने, राह दिखाने
शुक्र आ गया, बढ़ी विकलता।
क्या जाने क्या याद आ गया,
क्या इतनी बेकली बढ़ गयी।
लौट चले हम वापस नीचे
रोते रोते, दिन उजला था,
प्रणय देह की कारा में था,
भापा थामे हुआ गला था।
हमें हवाले कर तारों के
दबे पांव चल धूप घर गयी।

1978

अरण्य-दृश्य

जगली करौंदे के जगल मे
शाम ने धूल पर चित्र कई बनाये,
कीमत अदा करने को
बबूल के पेडो ने
पीले फूल गिराये

दूर-दूर कही एक गूज-सी व्याप गयी,
पास-पास आती एक पगध्वनि सुनायी दी,
पाजेब पहने हुए किसी के सुकुमार चरण
महावर की लालिमा घास पर छोड गये।

जगली बिल्ली मुह मे एक एक करके
बच्चे को उठाये
कही रख आती है,
कही रख आती है

सारा अरण्य वह मौन अपलक
यह देख रहा है, यह देख रहा है।

आओ, खोदें जमीन

यहा से कही भी पहुँचने को
कोई सड़क नही है।

सब सड़कें निकलकर अपनी ही परिक्रमा
करके फिर लौट-लौट यही पर आती हैं,
यह वह स्थान है
जहाँ से कही भी जाया नही जा सकता।

और यहाँ कीचड़ है,
बैठने का न सुभीता है,
पेड़ या पहाड़ यहाँ कुछ भी तो नही है,
मैदान रीता है।

आओ, खोदें जमीन—
पृथ्वी से कटने पर,
हम अगम्य अनजाने पाताल खोजेंगे।
भीतर ही भीतर जा
बाहर के पथो को
शात देखें समझेंगे।

अतृप्त वासना

शाम को
शहर के बाग के लॉन पर
किसी छोटे बालक का
लाल एक छोटा जूता पड़ा है,
नया है, सुंदर है,
किंतु उसे देखकर व्यग्र मन होता है।

दैनिक जीवन के
वन के पीछे
छूटे शाद्वल-पथ पर
इसी लाल जूते-सी
यौवन की रंगीन वासना पड़ी है,
और आगे आ उसे
गलत-गलत जगहा पर
अतृप्ति ढूंढ रही है।

बकवास का अन्त

बात घूमफिर कर
तुम्ही पर आ गयी।

विद्या, यश, अध्ययन,
थोड़ा पड़ता वेतन।
किस किस होटल का
स्वादिष्ट है भोजन।
रूखी रिश्तेदारों से
टूटती आशाएँ।
संविधान में स्वीकृत
कितनी हैं भाषाएँ।
नौकर की दुलभता
शांति की आवश्यकता,
ट्राफिक जाम शाम का।
शिक्षा की सार्थकता।
अधिकार नारी के,
कलाकारों के प्रणय।
नष्ट आदर्श सब,
भ्रष्ट सब मंत्रालय।
बातें सब करता रहा
ध्यान तुम्हारा रहा—

बात घूमफिर कर
तुम्ही पर आ गयी।

1974

उस्ताद के प्रति

हीरा हमारा सही, काट आपकी है।

हम गँवई मक्ई बोने चले थे,
धूल मे नंगेपाँव भुने थे, धूप मे जले थे—
हल की लकीरो से हीरे ऊपर आये,
आपने पहचाने,
गाँव का गँवार किसान
हीरे को क्या जाने !
आपने जमाकर हीरे, उनको तराश दिया,
मानो जड पत्थर को चेतन प्रकाश दिया।

ईंट-ईंट लाकर हमने मंदिर खडा कर दिया,
देवता की मूर्ति को पधराया,
लाल-लाल कनेर का बागीचा लगाया,
पानी का कुण्ड बना
निर्मल स्वच्छ पानी से उसको भरवाया।
लेकिन उस मंदिर तक पहुँचने के रास्ते,
साधारण लोगो की पूजा के वास्ते,
बनाना न हमे आया।

आपने खेत के बीच से राह को निकाल दिया,
काटकर चट्टानें रास्ता उजाल दिया,
लोग आने लगे भजन गाने लगे।
मंदिर बनाया हमने, बाट आपकी है।

हीरा हमारा सही, काट आपकी है।

1981

कैफियत

देवताओ की मूर्तियो को पसीना आने लगा है,
और मदान मे पाच खजूरो के बीच
खडी सफेद मसजिद मे
रात को किसी औलिया की
रूह रोती है।

चौराहो पर खडी गायें
चुपचाप आंसू बहाती रहती हैं,
सूखे हुए फव्वारो पर बैठी
चीलें चिल्लाती रहती हैं।

आदमी अहकार को
आत्म-विश्वास कहने लगा है,
अपने पुरखो की नृशसता को
इतिहास कहने लगा है,
सशक्त शत्रु द्वारा किया अपमान सहनशीलता कह सहता है,
बडे गर्व से निबल मित्र का कर सस्नेह गहता है,
क्रांति के नाम पर राजा को मार कर
राजा के महल मे
राजा की रानी के साथ अब रहता है।

1981

तर्पण

फूल जिसने लगाया, वह तो उसे भूल गया,
फूल तो लग ही गया, ऊपर उठता गया,
रगों में वेग था, गन्ध में आकाश था,
फिर भी थामे रखने का दायित्व पृथ्वी का था,

पृथ्वी
जो उस फूल को नीचे से दख सकती थी,
आँधी उसे खींचती तो थामे रख सकती थी,
लेकिन सुगन्ध पर तो हवा का अधिकार था।

पाँखुरियाँ झर गयी, पावस आ चले गये,
बाद में दोबारा फूल नहीं उगा,
गन्ध की अभ्यस्त हवा पेड़ को हिलाती रही,
पृथ्वी पर धैर्य से केवल मुस्कुराती रही।

पृथ्वी
जड़ों से जल खींचकर मरे हुए पुष्प का तर्पण करती है,
कभी-कभी शाम को फूल की याद में
चाँद और सूरज की किरणें वहाँ मिलती हैं।

कछुआ और हिरन

तुमने जितना देखा, बस उतना ही जाना।

इस पहाड़ के पीछे भी
शृंखला है कई पहाड़ों की।
इस ताल में एक ऐसा कछुआ है
जो अपने अण्डों की तरह ही
कूल पर दूर रखे गीतों की रखवाली
ताल के बीच से करता है।

कल्पना की कछुई जो गीत रख गयी है—
गीत जिनमें मौन में बन्द शब्द होता है,
शब्द जो मौन-ग्राम पार किये बिना
जन्म ले लेते हैं,
गीत जो स्वर की एक भंगिमा मात्र होते हैं।

जो मृग तुम्हारा बाण हृदय में घुसा हुआ
लेकर भाग गया है
इस पहाड़ के पीछे,
वही जब चिरन्तन अपने मित्र कछुए से
मिलने को लौटेगा,
बाण तुम अपना वापस निकाल लेना,
मृग कुछ न कहेगा।

1977

बीते मिलन

वक्त के लम्बे मैदान में
हमारे बीते मिलन
खाली गिलासों की तरह
पड़े रह गये हैं।

गिलास,
जिन पर शब्दों की उँगलियों के निशान हैं,
शब्द जिनसे हमने निगाहों को थामकर
इशारों को पिया था।

बूढ़ा चिड़चिड़ा काल
ठोकर से कई बार
वह गिलास उड़ा गया,
माना वह चिटख गये
लेकिन बिखरे नहीं,

जगह से बेजगह हुए
लेकिन टूटे नहीं।

वल्मीक

जहाँ भी वल्मीक देखता हूँ,
नमस्कार करता हूँ।

हो सकता है वाल्मीकि हों अन्दर,
या मिट्टी जम गयी हो
च्यवन ऋषि के ऊपर,
या कि सिर्फ चींटियों का
हो वह एक शहर

मगर
यहाँ सृजन है!

मिट्टी जहाँ भी है
उसे मेरा नमन है।

1978

वसन्त

वसन्त फिर आ गया,
जैसे कोई भीतर की खिडकी खोल
बाहर का दरवाज़ा लगा गया।

जैसे कोई धुले हुए सफेद टेबिल-क्लाथ पर
सरसो के फूलो का गुच्छा रख
कही किसी कपाट के पीछे छिप गया,
जैसे यह बताने कि वह फिर आ गया
मकान की चहारदीवारी पर
पीला वनफूल एक
नारा लगाने लगा हाथ हिला हिला कर।

कोकिला बोली नही,
आये वसन्त को चार घण्टे हो गये।
हवा महकी नहीं
बहुत देर भूल-भूल
आम्र मुकुल सो गये।

फिर भी दिखती है धूप यह सुनहरी
पेड सब वसन्ती, मकान वसन्ती,
उडते पछियो की पीली-पीली पाँखें—
इनमे ही छिपी हैं
मौत के पहले पीलिया से पीली
मा की गीली आँखें।

स्मृतियों के दृश्य

कौन कहता है कि मौत खामोश होती है !
बल खाती हर लपट चिता में लहराती है,
चिंगारी इतराकर ऊपर उड़ जाती है,
हर लकड़ी ठहर-ठहर
जैसे अपने पंजों की उँगलियाँ
चटखाती है ।

मनुष्य का कृतित्व खामोश होता है—
शाम को मायूस जाते सड़क पर
किसी एकाकी वृद्ध को किया हुआ नमस्कार,
देकर न माँगा हुआ
किसी मित्र को उधार,
किसी को देख विवश खिसियाना
आँखों ही आँखों में जताया सजल प्यार,
धमकी देते हुए गिरोह पर,
उठाया पास जो भी मिला
हथियार

दृश्य यह
मौत के कई साल बाद भी
पुकार लगाते हैं,
जो बहुत काल पूर्व नभ में धुआँ बनकर
उड़ गया,
उसकी याद दिलाते हैं ।

1981

हे प्रभु

हे प्रभु,
मुझे ऐसे सावधान लोगों से बचाओ,
जो पहाड़ पर चढ़ने के पहले ही
मलहम और पट्टियाँ झोले में लेकर चलते हैं,
उनसे भी
जो इतने ग़ाफ़िल हैं
कि बातचीत में खोये ऊँचाई से फिसलते हैं।

हे प्रभु
मुझे ऐसे कमज़ोर दिलों से बचाओ,
जिन्हें बहुत ऊँचाई से
नीचे देखने पर चक्कर आता है,
उन महत्वाकांक्षियों से भी
जिनको हर चोटी पर चढ़ा हुआ आदमी
चुनौती देता नज़र आता है।

हे प्रभु, मुझे ऐसे समझदार लोगों से बचाओ
जो बहुत विचार कर हर काम करते हैं,
ऐसे अदूरदर्शी मूर्खों से भी
जो बिना सोचे-समझे कुछ भी चाल पड़ते हैं।

राजमार्ग पर जो चलें, मैं न उनके साथ चलूँ,
अनजान बयाबान रास्ते पकड़कर
पुराने शहर पार कर
नये शहरों में निकलूँ।

सूरज का रजिस्टर

वह एक सुबह थी
जब मुझे देखा-अनदेखा कर
तुम चली गयी थी

इस बीच माली की झारी से
भीगे कितने भ्रमर,
घास में गिर गये।
शिशिर की दोपहर को
उड़ती हुई रुई-से
बादल घिर गये।

रात लौट आयी है,
तुम भी फिर वापस आ ऐसे बैठ गयी हो,
जैसे सुबह दोपहर
जिन्होंने जीवन को सीसे-सा पिघलाकर
दिया है लबरेज भर,
सुबह दोपहर नहीं
सिर्फ बूढ़े सूरज का
है हाजिरी का रजिस्टर

1978

जलयात्रा का अन्त

झुटपुटा होते-होते
नदी पार हो गयी,
सोये हुए बालक को कंधे पर उठाकर
यात्री नाव से भूमि पर कूद आया।

लेकिन इस क्रिया में
बालक का एक जूता
ढीला खुले बन्द का
तेज़ प्रवाह में गिरा, तुरत धारा बहा ले गयी,
नींद ही नींद में
बालक बड़बड़ाया।

लेकिन उस जूते को धारा वहाँ ले गयी,
जहाँ एक जूता पहन
दूसरे पाँव के जूते की प्रतीक्षा में
अगणित शैशव बैठे
उदास रो रहे थे।

197

ज़्यादा मत ठहरना

जिस गुसलखाने से
झम्म-झम्म नहाने की आवाज़ आ रही है,
वह इस महल के
भीतर ही भीतर कहीं
दूर सिरे पर होगा।

देह की सुगंध तुम्हें भीतर ले जायगी,
गिरते पानी की ध्वनि पुकार लगायेगी,
शायद भीगी-भीगी
किसी नारी-कंठ के गुनगुन-गुनगुन
गाने की मीठी ध्वनि आयेगी।

ज़्यादा मत ठहरना

बंद गुसलखाने की
चौखट पर पीला एक गुलाब ताज़ा रख,
फिर अपनी
आगे की यात्रा पर चल देना।

1978

गिरफ्तार राजा का महल

बाँसो के सुनहले वन मे
ऊँचाई पर बने महल के
दरवाज़े हवाओ मे खुलते टकराते हैं,
बुर्ज पर बैठे झुंड कबूतरो के
फुर से उड जाते हैं।

महल उजाड पडा है,
फानूस हवाओ म झूलते हैं,
सारे महल की रोशनियाँ जल रही हैं,
दूर भसें चर रही हैं।

राजा को और उसके कुटुम्ब को
पकड लिया गया है,
जगल के लोगो को खडा कर कतार मे
वह कम्बल बाँट रहा था,
दान-पुन राजा ही करते है।

आखिरी कम्बल बचा था, लाइन लम्बी थी,
तभी एक बूढे ने भागकर
राजा के हाथ से कम्बल झपट लिया था।
राजा ने तलवार निकाल हाथ काट दिये थे—
ऐसी तौहीन कही
राजा बर्दाश्त करते हैं।

मुचुकुन्द

जिस दिन पुरानी उजडी मसजिद की मीनार से
अजान की आवाज उठी
और शहर मे फैल गयी,
उस दिन हर आदमी को यह ग़लतफ़हमी हुई
कि वह मेरी आवाज है,
क्योकि गर्मी की दोपहरी मे
उन्होने मसजिद के दालान मे
मुझे सोता देखा था।

मैं कभी आवाज नही लगाता,
किसी को नही बुलाता,
जमीन पर मत्था नही टेकता,
अपने सबाब नही सहेजता।

मैं तो मुचुकुन्द की तरह
सिर्फ सोने की जगह ढूढता हू—
गुफा मे, मन्दिर मे, मसजिद में, गिरजे मे।
क्योकि मुझे जगानेवाले का इन्तजार है
और जब तक मैं सोऊँगा नही
वह मुझे जगायेगा कैसे ?
मगर हर जगह इतना शोर है कि मैं सो नही पाता
और जगानेवाला मेरे सोने के इन्तजार मे
कही छुपा बैठा है।

1980

ऊहापोह

एक जमाना गुजर गया
किसी हसीन नजारे को नही देखा—

यह नही
कि मेहराबदार चम्पई पाँवो के लाल नाखून
नही देखे,
यह नही
कि धोली बिल्ली दोपहर को सहन पार करके
निकली नही हलके से,
यह नही कि बच्चो ने फूलो से झोलियाँ नही भरी,
यह नही कि बारिश के बाद
जामुन के पेड से बयारें नही गुजरी,
यह नही कि मेघ नही घुमडे,
और यहाँ तक कि
बस की खिडकी के पास बाल तुम्हारे उडे

मगर
मैं जिस दृश्य को खोजता हूँ
वह कौन-सा है समझ नही पाता हूँ—

कही भी मुग्ध हो अब ठहर नही पाता हूँ।

भूलभुलैया

मुझे मालूम नही
कि उस महल की भूलभुलैया म
मैंने अपने को कैसे पाया ।

पहले मैंने आगन के फव्वारे देखे
जो भीतर से आलोकित थे,
फिर बैठ गया
छत पर जाती हुई सीढियों के पास,
जहाँ पलकहीन नयनो से एकटक
इतिहास सीढी पर बैठा
मुझे देख रहा था,
मैं उल्टा चलने लगा,
बहुत डरने लगा,
बाहर निकलने का मार्ग नहीं पाया,
मन ही मन मैंने अपना नाम दोहराया ।

एक कमरे मे मोटी मोटी किताबें भरी पडी थी,
एक तोता बैठा था, उन पर जो खुली थी ।
वही मैं बैठ गया,
तोते ने उडकर रास्ता बताया,
मैं बाहर आया,
कही से एक बहुत बडे काले बादल ने
महल को ढक लिया, छुपाया,
पाया बाहर कुछ लोग बहस कर रहे हैं,
महल के लोगो से भरा वह नगर है—
सडकें सुनसान हैं
चौराहो पर चहल पहल है ।

1981

जो भागेगा बच जायेगा

शाम का युद्ध बन्द होने पर
जो अपने शिविर में नहीं लौटते,
ज़रूरी नहीं कि वे वीरगति को प्राप्त हुए हों,
हो सकता है बुद्धिमान हों
चुपके से भाग खड़े हुए हों।

दफ्तर बन्द होने पर जो घर नहीं लौटते,
ज़रूरी नहीं है कि वह लापता हो गये हों,
या फकीर बन गये हों,
हो सकता है वह बुद्धिमान हों
किसी रईस विधवा के साथ
रहने लगे हों।

पति की गालियाँ सुन, चीख-पुकार सुन
पत्नी गृहस्थी के प्रति दुर्लक्ष्य हो
यह नहीं ज़रूरी है,
मन ही मन पति की ऐसी-तैसी करके
शायद वह मान चुकी मन ही मन दूरी है।

कभी शीशी टूट जाती है, कभी ढक्कन खो जाता है,
कभी वह बच्चे का खेल हो जाता है,
कभी काल का कबाड़ी
झोली में डाल उसे
टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में विगत की खा जाता है।

1981

राममणि की याद

गाँव के घाट पर
टूटी फूटी हुई तीन चार सीढ़ियाँ,
और दूर क्षितिज पर
पेड़ एक इमली का।

नववधू धन आयी है
चार-पाँच दिन पहले
रजकिनि कटोरी-सी कजरारी आँखें ले,
पीट पीट पत्थर पर
वस्त्र धो रही है।

धन्य है रजकिनि यह !
याद इसे देख कर राममणि आती है।
पाँव सदा गंगा में,
हाथ प्रवाह की गति से खेलते।
वस्त्र धो रही है
बाँध लिया है गट्ठर।

चली घर
आँचल से ऊपर के अधर के
सीकर-कण पोंछ कर,
निर्भय निर्जन नितान्त अपने घर लौटते,
पीला बैजयन्ती का फूल हो अनमने
ढीले-ढीले जूड़े में
मुदित खोंस कर अपने।

1981

याचना

हे रजकिनि, अभिनव राममणि !
देह के गाँव-गाँव पार कर
आया हूँ आज मैं
दो क्षण को चण्डिदास का शरीर माँग कर।

देह के गाव मे
चेतना की सुस्फटिक शिलाओ से घिरा हुआ,
स्वच्छ मुकुर नीर का फैला है ठहरा हुआ,
सुधियो का मधुर जल उसमे है भरा हुआ।

वस्त्र धो प्रदोषा को
गगा से गागर भर जब तुम लौटोगी,
चण्डिदास की मुद्रा मे किसी तरुतले
मुझे खड़ा देखोगी।
नीचा मुख कर जैसे निकल जाना चाहोगी,
खड़े-खड़े तलवे मे गड़े कंकर को
हाथ से पाँव झाड़ सहलाना चाहोगी

किंतु एक चुल्लू भर
गगा का द्रवित गीत
क्या तुम मेरी
अजलि मे डालोगी ?

अनिश्चित

जाने का समय तो
आया और निकल गया।

नयनो ही नयनो मे
दूर जाता प्रवाह मौन निहारता रहा,
सकल्प विकल्प मे जीवन हारता रहा,
और कुछ-न कुछ कहकर,
चुप रहकर सब सहकर,
बालक-सा बहल गया।

बार-बार तुम आयी,
बार-बार पुकारा,
बार-बार आग्रह से
कहा—'छोड किनारा!
अन्तिम बार कहती हूँ
न कहूँगी दुबारा!'
सोचता विचारता मन ही मन हारता
देखता मैं रह गया
मानव-तन की कारा!

हे गगे,
अनिश्चित खडा-खडा
अनछुआ प्रवाह से
मैं शिला मे बदल गया।

1981

शेष सब हुआ है

पेड़ों की पत्तियाँ ताँबिया हो चली हैं,
एप्रिल नुक्कड़ पर है।

धुले बरामदे के शेष संचित नीर पर
गौरय्यें आती हैं,
वातायन गोखन पर सफ़ेद चादर पर
छोटी छोटी इमली की
पत्तियाँ उड़ आती हैं।

दूर कहीं रेल के जाने की आवाज़ है,
और खाली कमरे में
गूंजता है सन्नाटा।
एकाएक द्वार पर कभी तीसरे पहर को
सहजन की फूलदी डाली-सी
अब तुम न दिखोगी।

दूर कहीं तुम होगी।

शेष सब हुआ है।

नीले आकाश में बादल सफेद देख
नीर से निमज्जित नयन
आँचल से पोंछोगी।

छावनी

दूर छावनी थी—
बीच म सड़क के दोनों ओर
घनी-घनी अमलताश-वनी थी ।

सोनहरी आभा से पथ उफन रहा था,
सोने का चूर्ण जैसे तरु से छन रहा था,

दूर पहाड़ी पर
चूने से पुती एक रेजीडेन्सी क्लब की सफेद
इमारत थी,
अँग्रेजी सगीत पियानो पर बजता था
तो सोने की घटियाँ बयारो मे नाचती थी ।
नीचे मुझे खड़ा देख
मेरा सिर चूमती थी ।

सगीत यो लगता था
जैसे सारा पश्चिम
पूव के अनागत सुनहले युग की
अगवानी करता है,
इस उवर मिट्टी की सलामी करता है ।

1981

भोर का तारा

अब सितारे घर जा रहे हैं।

ओस से गतनिशि के छूटे पदचिह्न धो,
विसर्जित सभा की स्मृति भर तनिक रो,
अपनी ही आँखों देख चाँद का डूबना,
बहते हुए काल का बहने से ऊबना,
रातभर छाया कर
बैठे ढोर-डगर पर,
धीरे-धीरे उतर सितारे घर जा रहे हैं।

साथी, सब एक-एक करके चले गये,
मगर शुक्र अपने पाव घसीट कर न जा सका,
पृथ्वी पर कहीं दूर किसी गवाक्ष से
कोई उसे देखकर रात जागता रहा।
उसको भरमाने को देर से आया वह
और बिना नीचे देखे चलता रहा,
मगर नयन लगे थे, प्रतीक्षा में जगे थे,
जाऊँ या रह जाऊँ इसी ऊहापोह में
सूरज निकलने तक शुक्र जलता रहा।

कवियो के घर

खिडकी से कमरे में फूटती
तीसरे पहर की मीठी रोशनी मे
एकाकी कुर्सी की छाया लम्बी होकर
कमरे मे पडी है।

कितने कमरो मे कितने बार रोशनी
ऐसे पडी होगी,
चचला कविता लिखते हुए कवियो के
पीछे खडी रही होगी,
वही सब, जिनकी पाण्डुलिपिया
मेजो पर पडी होगी।

इन ही कवियो के घर मे समझदार नयी
पीढी आ गयी है—
उपयोगी काम अधिक करती है
कविता के स्थान पर,
और उन घरो मे अब अंग्रेजी सगीत बजता है,
पार्टी के बाद कवि का पोता किशोर
मोटर की चाभियाँ खोजता है।

फिर भी बाहर खिले सुदर गुलमोहर की
शोभा कौन थामेगा ?
खिलना कौन रोकेगा ?

1981

भीम

सबका अपने भोजन का कुछ भाग
भीम को देना चाहिए,
कन्धे पर कुन्ती को उठाकर वह चलेंगे।
संकट आ जाने पर
सबकी रक्षा करेंगे।

किन्तु प्यास भीम की न पानी से बुझेगी,
दिन-प्रतिदिन बढ़ेगी
एक घड़ी ऐसी भी आयेगी,
जब वह पानी का स्तम्भित करेगी।

रिपु की उर से
उष्ण रक्त पियेगी।
क्षत्रिय की प्यास तो मुक्त अपमान के
प्रतिकार से बुझेगी।

द्रौपदी जब केश अपने गूंथेगी,
उसी प्यास की तृप्ति
मन्दार-वेणी बन,
कृष्णा के कृष्ण केश
सुशोभित करेगी।

मरुबाला

एक चुल्लू पानी पीने को
हाथ का प्याला बना
अधरों से लगाया,
पर तुमने पानी देना ही थाम लिया !

ऊपर तुमको देखा
तुमने नीर डालना आरम्भ किया,
मेरी अँगुलियों के
बीच-बीच से होकर
नीर सब पृथ्वी पर बह गया ।

अनजाने हाथ मेरा हाथ से तुम्हारे
छू गया,
तुम्हारे हाथ से सुराही छूट गयी,
पानी सब बह गया, सुराही टूट गयी ।

शाप अमर तृष्णा का
देकर मरुबालिके,
यात्रियों के यूथ के संग
तुम चली गयी ।

1981

गगा की खोज

आज घर लौटना था,
घर नही लौट सका,
यह भी नही याद रहा,
कब घर से निकला था ।
यह भी नही याद रहा
कब कहा चला था ।

हर गली अपरिचित थी,
हर नगर सुनसान था,
केवल दूर क्षितिज से
कलकल कलकल कलकल
आता गभीर धीर
गगा का गान था ।

गगा की खोज मे
क्षितिज को चलने लगा,
सूय उष्णतर होकर
सिर पर जलने लगा,
क्षितिज पीठ पीछे हुआ
केवल अनन्त नभ
नीलिमा असीम मे
फैल छलने लगा ।

लौट जा

फिर भी मुझे जाना है !

माता या पिता का नाम नही याद है,
परिचित किसी भाषा मे न सभव सवाद है,
न कोई उत्तेजना है, न कोई प्रमाद है,
केवल यह विदित है
मेघों की चार घडी चिकनी जो छाँव है
वह एक पडाव है।

राह के नाम पर धूप को रोकता
सघन कान्तार है,
औ' पथ दिखाने को
चक्रमण करती
वायु की चीत्कार है,
वापस लौट जाने की
सस्न्तर की मनुहार है।
फिर भी दूर प्रवाहित
एक जलधार है,
जिसमे निस्सीम उज्ज्वल जल का विस्तार है
जिसकी यह बार-बार
आती पुकार है—

अभी भी लौट जा,
पथिक वापस लौट जा।

1981

पत्थर की नाव

एक नाव होती है पत्थर की,
वह डूबने के लिए ही होती है।

उसके नीचे समुद्र भी होता है
पर वह शान्त होता है,
क्योंकि उसमें सदा तूफ़ान होता है।

उसमें लोग सदैव ही यात्रा पर रहते हैं,
जहाँ से चलते हैं, वहीं से गुज़रते हैं,
वहीं पहुँचते हैं।

लकड़ी की नावों में बैठकर
लोग पत्थर की नाव देखने आते हैं
और गुन गाते हैं

उस मूर्तिकार का जिसने इसे बनाया,
पत्थर को लकड़ी किया,
बदल दिया,
मानव किया।

तपस्वी

महाराज,
अब समुद्र गुफा तक आ गया है।

आने दो,
सींगवाली मछली की प्रतीक्षा है,
जिसके सींग में नौका को बाँधकर
मनु ने जय पायी थी प्रलय पर।

महाराज,
अब आधी गुफा समुद्र में डूब गयी है।
डूबने दो,
जब ज्वार उतरेगा,
मेरा कमण्डलु इस जल से भरा होगा।

और पुत्र वरुण का
मन्त्राभिषिक्त होने करबद्ध खड़ा होगा।

1983

देखते नही हो ?

देखते नही हो ?

उसके हाथ
निरंतर नमन मे
नही जुडे हैं,
पक्षाघात से मुडे हैं !

देखते नही हो ?
वह तुम्हें प्रणाम नही कर सकता,
उसके हाथ कटे हैं।

देखते नही हो ?
नमन के उत्तर मे तुम्हारा अहंकार
ऊपर उठने के बदले झुका जा रहा है,
विनय के गौरव से भाल नवा रहा है !
नमन न करनेवाले पर
तुम्हें क्रोध आ रहा है।

जलमग्न

वह जो बोलता ही जा रहा है,
वह जो निरंतर सिर हिला रहा है,
वह जिसके नयन बात-बात
पर हैं छलछल,
वह जो तत्परता से देता है
हर काम मे दखल ।

वह जो अकेलेपन से घबराता
बेसुरा गाता है,
वह जो संगीत मे अपने-पराये
सभी भूल जाता है ।

वह जो सदा हँसता ही रहता है,
जिसके मुख पर सदा गभीरता है ।

सब दिग् से हारे हैं,
अपने चुने हुए पात्र के
अभिनय मे मग्न हैं ।
जन्मजात विकृतियाँ,
विगत अनुभूतियाँ,
किसी प्राचीन नगर की सडको,
इमारतो-सी
उनके मन के अथाह
सागर मे मग्न हैं ।

1933

सीढियां और बालक

पहाड को काटकर
बनी है सीढियाँ,
चढकर उतर गयी
पीढियो पर पीढिया ।

सुविधा है,
भय नही फिसलने का,
श्रम है थकान भी
चढने-उतरने का ।

मगर एक बालक है
पसीना-पसीना जब ऊपर
पहुँच जाता है,
ऊपर से नीचे
अपनी गेंद लुढकाता है ।

और फिर सीढियाँ छोडकर
गेंद लेने
गिरता-पडता फिसलता,
घुटनो पर से छिलता,
नीचे आता है,

फिर ऊपर जाता है,

जब तक न ऊब जाये
यह क्रम दोहराता है ।

1953

बोट-क्लब की एक घटना

तसवीर खिंचवाने को
घास और बाँस की डोंगी पर
हाथ में बाँस साधे
कमर में लुंगी बाँधे
भाई साहब मुस्कुराये,
डोंगी को ले चले धारा में बहाये !

फ़ोटो खिंच जाने पर
मछुवे की डोंगी वापिस की,
बख्शीश दी।

और बोट-क्लब में आ
आयरिश कॉफ़ी पी—
विलियम वर्ड्सवर्थ की एक कविता पढ़ी
'लेट नेचर बी युअर टीचर !'

मगर यह न बताया
उनके पिता थे प्रोफ़ेसर,
तीन सौ रुपये महीने पर
पढ़ाते थे
इंग्लिश लिटरेचर।

अशोक-तले विनोद

विनोद ही विनोद मे
मेरे अनुनय पर
तुमने अशोक-वृक्ष पर
पदाघात किया।
वृक्ष वह तुम्हारे लाल-लाल महावर के
रगो को चुरा
फूले फूलो से भर गया।

पहले हम चकित हुए,
थोड़ा विभ्रमित हुए,
दोनो फिर हँसने लगे
पेट अपने पकड़कर!
आगे गये हुए कैमरा लटकाये
पति ने तुम्हारे देखा मुड़कर—
हमे एक दूसरे को देख हंसते हुए
गये शका से भर।

और उन्हें यह लगा,
हम उन्ही पर हँस रहे हैं!

बोले गभीरता से—
'रात हो जायेगी!
खी-खी हँसना छोड़ आप
चलें कदम तेज कर।

नौका पर वेणु-वादन

तुम्हारे आरोह-अवरोह पर
नदी की तरगें चली
नीचे गिर, उठ ऊपर।
फैली है चाँदनी,
पीछे छूट रहे तट के बासो के सघन वन,
मेरा सिर गोद मे है तुम्हारे
और तुम कर रही
वेणु-वादन।

शिशिर का जो पवन सौरभ से भरा है,
वही पवन श्वास से वशी मे गया है,
उसमे कुछ सुरभि पके बेरो की भरी है
तुम्हारी श्वास की,
इस सबसे बेखबर जा रही तरी है।

एक कपोत धवल
जो बैठा अकेला है पाल पर,
उसकी कपोती उसे
चादनी मे ढूंढ रही होगी डाल-डाल पर।

1963

मेहदी का स्वप्न

आओ, इन जामुनी हथेली पर
काली मेहदी लगा दू।

पहले एक तोरण
आम्र-पल्लवो का बनाऊँ,
और उसके नीचे
कलश एक सजाऊँ,
और उस कलश पर
रख मृदुल आम्रदल,
रखू एक नारियल।

हथेली मे बन्द एक
स्वप्न कर सकोगी,
जो इस जीवन मे कभी
होगा साकार नही।

यह भी थोडे दिनो मे
धीरे धीरे धीरे
मन्द-मन्द होता-होता
मिट जायेगा।
मगर मन बार-बार
इसे बनायेगा।

केवल तुमने

केवल तुमने मेरे
पौरुष का समर्थन किया।

अहंकार की क्यारी मेंहदी की
जिससे व्यक्तित्व का उपवन सुरक्षित था
उसे बहुत बड़ा देख
विनोद ही विनोद में सँवार दिया।
मेरी प्रभविष्णुता
के आगे नतदृग होकर
आँखों ही आँखों में मुझे उतार लिया।
अनुगामिनि होने का थोड़ा संदेह हो
इतना ही बस पीछे मेरे चली,
बिना कुछ बोले ही
झुक बोगनविलिया की मुकुलित डाली-सी
चेतना के द्वार पर तुम कमान बन गयी।
थककर जब बैठ गया
स्वप्न की उपत्यका में,
सुरधनु बन तन गयी।

1981

मेरा क्रोध और तुम

मेरे बहुत क्रोध करने पर
तुम जैसे सम्मोहित हँसती चली जाती थी।

सड़क पर, बाज़ार में
भीड़भरे रास्तों पर
कभी मैं बिगड़ता था
बोलता था चिल्लाकर,
सम्मोहित आँखों से
तुम ऐसे देखती थी,
जैसे मैं क्रोध में
लगता हूँ बहुत सुन्दर,
क्रोध एक विनोद है
और हम परिहास कर रहे हैं
—लोग जमा होते थे,
फिर चल देते थे,
एक-दूसरे को
हँसकर देखते थे,

और फिर जाने कब, दृष्टियाँ मिलती थी,
मैं भी हँस पड़ता था,
मन के साथ देहों की
निकटता बढ़ती थी।

तुम्हारा चेहरा

जब तुम्हारा चेहरा
सामने आता है,
धूप उसपर पड़ रही होती है।
बाल तुम्हारे कसे होने पर भी
इधर से, उधर से निकलकर
हवा मे उड रहे होते हैं,
आँखो ही आँखो मे बात अनकही होती है।
शब्द श्वेत कपोतो-से
पहाड की तराई मे खडे दुर्ग से
दूर नीलाकाश मे फुर से
विलीन हो जाते हैं।
आँखो ही आँखो मे केवल सामीप्य-सुख
की हँसी होती है।
दृष्टि स्थिर होती है—
पुतलियो की भ्रमरियाँ
महुवे के कुंडो मे
निश्चल पडी होती हैं।

1983

मेरा क्रोध और तुम

मेरे बहुत क्रोध करने पर
तुम जैसे सम्मोहित हँसती चली जाती थी।

सड़क पर, बाजार में
भीड़भरे रास्तों पर
कभी मैं बिगड़ता था
बोलता था चिल्लाकर,
सम्मोहित आँखों से
तुम ऐसे देखती थी,
जैसे मैं क्रोध में
लगता हूँ बहुत सुन्दर,
क्रोध एक विनोद है
और हम परिहास कर रहे हैं
—लोग जमा होते थे,
फिर चल देते थे,
एक-दूसरे को
हँसकर देखते थे,

और फिर जाने कब, दृष्टियाँ मिलती थीं,
मैं भी हँस पड़ता था,
मन के साथ देहों की
निकटता बढ़ती थी।

तुम्हारा चेहरा

जब तुम्हारा चेहरा
सामने आता है,
धूप ऊपर पड रही होती है।
बाल तुम्हारे बसे होने पर भी
इधर से, उधर से निकलकर
हवा मे उड रहे होते हैं,
आँखो ही आँखो मे बात अनकही होती है।
शब्द श्वेत कपोतों-से
पहाड की तराई मे खडे दुर्ग से
दूर नीलाकाश मे फुर से
विलीन हो जाते हैं।
आँखों ही आँखों में केवल सामीप्य-सुख
की हँसी होती है।
दृष्टि स्थिर होती है—
पुतलियो की भ्रमरियाँ
महुवे के कुडो मे
निश्चल पडी होती हैं।

1983

अनिमंत्रित

मैं हमेशा ग़लत वक्त पर पहुँचता हूँ ।

सुबह सुबह निकल कर भी पहुँचते पहुँचते
दुपहर हो जाती है,
मेज़बान के घर राजा आया हुआ होता है,
एक बडा जनसमूह खडा हुआ होता है,
या बहुत लोगों की दावत होती है,
मेरे पहुँचने तक मेहमान आने शुरू होते हैं,
या खाना वाना खा मेज़बान सो जाता है,
भीड, धूमधाम देख फाटक पर रुकता हूँ ।

या फिर जुलूस से सडक बन्द होती है
और अटक जाता हूँ,
या फिर अपनी फटेहाल हालत से
किसी को खटक जाता हूँ ।
खिसियाना होता हूँ,
उँगलियाँ चटखाता हूँ,
बिला वजह बोलता हूँ, जाने-अनजाने सबको
नमस्कार करता हूँ,
कोई मुझे देखे तो खीसें निपोरता हूँ,
फिर उसे पास-पास घिरती खामोशी से
घबरा कर सटक आता हूँ ।

19

एक तोते की मृत्यु

महुवे के जंगल मे
पेड़ो की खोडर मे
जमा धूप मे उफना
मधु पी कर एक तोता
शहर की बुर्जों पर,
किलो के खडहर मे
और यहाँ तक कि सगीत की महफिल मे
गाता है।

शहर मे लोग ध्यान नही देते हैं,
किले तो वैसे भी निजन ही होते हैं,
सगीत-सम्मेलन मे उस्ताद हँसते हैं,
मिट्ठू मिया अपने आप
उस्ताद बन जाता है।

अँधेरा होने पर वह महुवे के वन मे
लौटने का रास्ता भूल जाता है
चारों तरफ तने बिजली के तारो से
टकराता, मर जाता, और अटक जाता है।

1983

हस का प्रयाण

आज की रात रुक जाओ हस,
अभी तो शहर म दिये भी नही बुझे।
हमको ठहरना था इतना ही बस यहाँ,
लम्बा है रास्ता, बर्फ की चोटियाँ,
नीला शून्य आकाश, नीचे छोड यह दुनियाँ,
चिरतन मौन खडी काली विटपावलियाँ
पार कर, तारो के पार जाना है मुझे।
आज की रात रुक जाओ हस
अभी तक बहुत लोग नही मिले हैं।
मिलना या बिछुडना दोनो ही हैं छलना,
हस का ध्येय मानसरोवर पहुँचना।
कोई नही पराया, कोई नही है अपना,
लौटे नही कभी हस जो उड चले हैं।
दो क्षण रुक जाओ हस, तुमको निहार लें।
मुझको अपने भीतर देखो आँख मूदकर,
मुझ-सा ही एक हस रहता है वहाँ पर,
वह भी उड जायेगा, एक दिन खोल पर—
उस पर ही ध्यान दें, उसको दुलार लें।
आज की रात रुक जाओ हस, तुमको निहार लें।
विदा के समय ज़रा आरती उतार लें।

अनन्त यात्रा

उतनी ठंड में, उस अँधियारे में
सारे सम्बन्ध शेष अपने हो जाने पर
भी मैं क्यों खड़ा रहा बसस्टाप पर ?

पता था तुम न कभी रुकने को कहोगी,
केवल फीकी हँसी हँसती रहोगी,
जो होगा, केवल औपचारिकता होगी,
फिर भी
उस ठंड में खामोश अँधियारे में
छूट मैंने जाने दी बस पर बस निरन्तर।

शायद मालूम था—
जीवन का अन्तिम जुआ हार मैं चुका हूँ,
शायद मालूम था—
चक्रव्यूह में घिरे अभिमन्यु की तरह
कमर से तलवार उतार मैं चुका हूँ।
शायद मालूम था
अपने ही किले में दूर-दूर गूँजती
अपनी ही प्रतिध्वनि बात मुझसे करेगी।
शायद कभी तुम्हारी हँसी सुनायी देगी।

जाना नहीं है तुम्हें ? तुमने जब कहा था,
विपरीत दिशा की किसी अनजानी
बस पर मैं दौड़कर चढ़ा था,
जो अभी तक चलती ही जा रही है।

1983

द्वीपस्वामिनी को विदा

मैंने तुमको वचन दिया था
द्वीपस्वामिनी,
जब मैं जाऊँगा, तब तट से
स्वप्नद्वीप की ओर तुम्हारे
दीपक एक बहा जाऊँगा।

जाने को हूँ खड़ा
दीप पर दीप बहाता जाता हूँ मैं,
पर प्रवाह है तीव्र, डुबोता दीप
न कुछ कर पाता हूँ मैं।

हैं घड़ियाल अनेक, शपथ है
नहीं तैरकर मिलने आना—
तुमने मुझसे कभी कहा था,
बहुत पुरानी है यह गाथा,
लेकिन उसका व्यतिक्रम करना
मेरे बस की बात नहीं है,
रुक सकना भी अब तो मेरे हाथ नहीं है।
बिना द्वीप तक दीप बहाये
द्वीपस्वामिनी, जाता हूँ मैं!
आज प्रवाह तेज ज्यादा है,
और न कुछ कर पाता हूँ मैं।

तन-तरुवर

जब पंछी उड़ गया,
पेड़ वह क्षार हो गया।
वही पेड़ जिसके तले आकर
चूड़ीवाले और बिसाती
तरह-तरह की चीजें लाकर
बैठे थे सामान लगाकर।
वही पेड़ जिसकी डालों पर
रंगबिरंगी हुई रोशनी,
लगी झंडियाँ, हुई सजावट
हुई प्यार से उसकी मगनी
एक लता से, जिसे देख सब
कहते थे—नाज़ुक है कितनी!
फिर
उस पर बँध गयी अलगनी
तरह-तरह के कपड़े सूखे,
तरह-तरह की हुई दावतें
तरह-तरह के जतन अनूठे—
पर जब उस पर रहता आया
अनदेखा उड़ गया विहग—
पेड़ वह क्षार हो गया।

1983

बन्दर

उन्होंने एक बन्दर पाला है,
जो वह स्वयं करने में असमर्थ हैं,
बन्दर करता है—
कूदता, फाँदता, नकल उतारता,
खिलवाड़ी करता है।

कोई इज्जतदार मेहमान आता है
खूँटी पर टोपी लटकाता है,
बन्दर एक झपट्टे में उसे उड़ाता है।
कोई फटेहाल आता है
बन्दर उसका मुँह नाचने लग जाता है।

और वह मुस्कुराते हैं
ऊपर ही ऊपर से माफी माँगते हैं,
लेकिन फिर उनकी हँसी
रोके नहीं रुकती है,
पेट दबाकर लोटने लगते हैं
बीच-बीच हाथ जोड़
"माफ कीजिएगा!"
कहते हैं।

समझौते

गोबर के ढूगर पर
मुर्गा चढ़कर तनकर
बोला—"कुकडू-कूँ !"
कहीं से बिलरिया आ
ले गयी उसको उठा।

दीवार के पीछे बैठी बिलरिया,
झपटी उसपर दारोगा की कुतिया,
छीन मुर्गा ले गयी
भाग्य है भइया।

कुतिया सड़क के तले
बैठी मुर्गा लेकर।
ऊपर थी एक चील
काट रही चक्कर—

एक झपट्टे में वह मुर्गा ले गयी,
ऊपरवाले से कौन लड़ सका है!
कुतिया बिलरिया का
समझौता हो रहा है,
मुर्गों की मुर्गी को भी
बुलाया गया है।

1983

माण्डूगढ़ में रात

इसी पगडण्डी पर
बीच-बीच ठहर-ठहर
होली में आती थी
रानी रूपमती पलाश बटोरने।

इसी दुर्ग से चलकर
आगे जो कुण्ड है
उसमें भरकर पलाश
आती थी रूपमती सुमन-रंग घोलने।

दुर्ग यह अभी भी है।
सेना समय की
सभी कुछ रौंदकर दूर चली गयी है।
जिन तरुओं के तले
किमखाबी परदों की पालकियाँ रुकती थीं,
वहाँ अब गडरिये रोटी पकाते हैं।
जहाँ कभी मुक्त हास्य तरु तले गूँजा था
माण्डू के दुर्ग में
रवि अस्त होते ही
शृगाल चले आते हैं।

केवल लटकाये एक धुँधली-सी लालटेन
सरकारी दो नौकर
ऊँघते रहते हैं।

198

योगमाया

जहाँ तक आँख जाती है
उन्हीं का इलाका है,
जिन्हें कहते हैं महामाया,
वह ही चुकता करती हैं
जिसका जो भी है बकाया।

दुर्ग की रक्षिका, इसीलिए दुर्गा हैं,
सूर्य और चन्द्र उनके दो स्तन हैं,
उनके प्रकाश का दूध पी-पी कर
जन्मते, बढ़ते, कालकवलित होते जन हैं।

सबने उन्हें एक एक अमोघ अस्त्र दिया है,
स्वयं किशोर राजा ने उन्हें नियुक्त किया है।
राजा सदा राजकुमार रहना चाहता है,
प्रेम में मस्त मधुर नवल नृत्य करता है,
मृदुल गीत गाता है,
पहले उन्हें भेजता है
जब भी यहाँ आता है।

थोड़े दिन कावड़ियाँ
प्रेम की वारुणी से लबालब भरती हैं,
फिर राजा अन्य लोक में प्रयाण कर जाता है,
कल्पनाएँ कवियों की
उस थोड़े समय का युग-युग वर्णन करती हैं।

1981

तोता

आप इस तोते के रग पर न जाइये।
यह सिर्फ देखने मे हरा है,
मगर सफेद अँग्रेजी तोतो को सिखानेवालो से
इसने बोलना सीखा है,
रग को छोड कर और सब बातो मे
अँग्रेजी तोता है।

हिंदुस्तानी तोतो की
सिफ चोच लाल होती है।
इसकी, जरा गौर से देखिये,
एक नाक भी है,
चोच नीचे है, तो नाक ऊपर है
इसीलिए धाक भी है।

आप अगर इसे हिंदी मे बोलना
सिखायेंगे,
वही वाक्य यह आनन-फानन मे
अँग्रेजी मे अनुवाद कर बोलेगा,
किसी भी डाली को पजो से तोडकर
लकडी बना झूम झूम
इधर-उधर डोलेगा।

1983

दायित्व

मेरा एक ही दायित्व है—
जो धारा मुझे वहन कर रही है,
आगे ले जा रही है,
उसके अनुकूल रहूँ।

अपने अहंकार के डाँड से
उसे न काटूं,
जिस भी दिशा में बहे
उसी में बहूँ।

उस धारा पर विश्वास रखूं।
वह जिस दिशा में बहे
उसमें रखूं आस्था,
उसके बहाव का करूँ नमन,
क्षमा माँगूं उससे
कि वह कर रही है मुझे वहन।

वह ही मेरी मंजिल है,
वह ही है रास्ता,
उसका ही निर्मल जल
है मेरा वास्ता।

1983

कवि की मृत्यु

सब कुछ वैसा ही है—
नीला आकाश, पीली धूप, खामोश पेड,
गाती चिडियें,
खेतो की गन्ध से पुती हुई लम्बी मेड।

सब कुछ वैसा ही है—
मैदान मे खेलते बच्चे, सुबह घूमने जाते वृद्ध,
स्कूलो से लौटते लडके,
लडकियाँ,
मन्दिर से लौटती हुइ बुढिया।

सब कुछ वैसा ही है—
पीली-पीली गडही मे काली-काली भसें
चू-चरमर झूमती जाती बैलगाडियाँ,
नीले आकाश मे चक्कर काटती हुई चीलें,
सफेद फूल, घास मे जसे बिखर गयी खीलें।

घाट की तीसरी सीढी का टूटा पत्थर,
मरघट मे धुएँ से एक तरफ काला पडा
पेड पीपल का खडा,
और मिट्टी के मकानो मे एक पक्का घर नया,

लेकिन जिसने इन सबको चाहा था,
कविता मे सराहा था,
सिफ वह चला गया।

खरीदारों से

मेरी पीड़ा के खरीदारो !
कसम अपने माल की,
माल खरा है।

अन्दर से निकला है
जो नीर आँख में भरा है,
बल पेशानी के
वर्षों के हलों से खुदे हैं,
सब पीड़ा की उगी है फसल,
जिसे चुगने शब्दों के पंछी
जुड़ते करते चहल-पहल।

आँखों की खिड़की से झाँकने पर
मन की नदी के तट दूर-दूर
रेत बिछी है जैसे होरचूर !
टूटे हुए शीशे के पहाड़ों से सपनों की
बस यही याद बची है।

पहले कभी यहाँ एक काँच का शहर था,
बिल्लौर की थी पर्वत-श्रेणियाँ !
एक के बाद एक कई भूकम्पों ने
चूरचूर कर *दिया शहर और घाटियाँ,*
ठंडी तराइयाँ।

1933

चॅस्टर पहने तुम

शाण पर घर कर शिशिर फिर
छुरी ले आया !
धूप गहरी सुनहरी औ' इस वनी की हरी
गहरी हो गयी कुछ और छाया।

चॅस्टर पहने हुए तुम आ गयी—
जामनी हलके काले पाड़ की साड़ी,
हाथ मलती, कुछ ठिठुरती,
प्यार से पाने तुम्हें पागल हवा आयी पहाड़ी।

प्यार जितना वह जताती
चॅस्टर में देह तुम अपनी छिपाती,
खिलखिलाते पेड़ शीशम के
और मैनाएँ
तुम्हारे चरण में आ गीत गाती।

और स्वर कर तनिक ऊँचा
मुझे तुम बाहर बुलाती—
पेड़ शीशम के दिखाती,
मृदुल उँगली उठा कर नभ नील बतलाती,
खिलखिलाती—

मैं ठगा-सा देखता
धूप कैसे बाल लम्बे और काले
सुनहले रंग के बनाती।

जाते-जाते

जूड़े मे सूरजमुखी लगाये
ऊपर हँसती, भीतर उदास
विदा मुझे देने बस से
आयी तुम,
बैग मेरा उठाये, करती विनोद
जैसे कितनी
बात यह अच्छी है
कि मैं जा रहा हूँ।

बस पर मैं बैठ गया!
घण्टी बजी, बस चली।
दुपहर के पवन मे दूर तक भी पहुँचकर
देखा जो झाँक कर
पाया तुम्हें उधर ही देखते—
लगा बस से उतरकर
भाग लौट कर कहूँ—
मैं नही जा रहा हूँ।

1983

उठ गयी गोष्ठियाँ

अब कबूतर यहाँ नहीं आते ।
खुली हुई खिड़की से
खोलें बिखेरती धूप आती है,
गाँव के घाट पर
चमका कर रखे हुए
चांदी के पायजेब
हवा उठा लेती है—
सस्स सस्स बजाती है,
मगर कुर्सियों पर अब
शक्लें हैं अजनबी
बिना पते के लिफाफे
डाकिया दे जाता है कभी-कभी ।

चले गये वे लोग,
उठ गयी गोष्ठियाँ,
जो दो चार लोग पुरानी महफ़िल के बचे हैं
उनको नये छोकरे नहीं पहचानते—
कभी-कभी ये मिलते हैं
पुरानी तस्वीरें दीवारों से उखाड़ते,
खुद एक दूसरे के
रंगीन चित्र चिपकाते—

मगर

अब कभी भी
यहाँ कबूतर नहीं आते ।

वे बीते सवेरे

सवेरे अब ठंडे होने लगे हैं।
याद आते हैं कालेज के वे दिन,
जब बाहर
तुम्हें अहाते की धूप में
चाकलेटी चेस्टर पहन
सोने के झरना म
घूमता देखता था।

उस चौडे अहाते म
न बाग, न बगीचा था,
फिर भी शिशिर ने
जगली झाडिया पर
नारगी रग उलीचा था।
नारगी फूलो से भरी थी झाडियाँ,
झरे हुए फूलो से पटा था अहाता।

उनके बीच तुम्हे मैंने
बिस्तर मे से खिडकी से देखा था—
चेस्टर नया था
जाडा आ गया था
क्या यह हो सकता था—
ऐसा सब रहे सदा !

मैं तो महज एक विद्यार्थी था,
तुम बहुत छोटी थी—
हमारी मरजी से बडो बडो की थी मरजी।

1983

परिक्रमा

जाने किन अनजाने मंदिरो की
परिक्रमा पूर्ण कर
याद लौट आती है,
हिलते हरे बाँस के
घने समझदारी के
लम्बे पुल पार कर।

पुल जिनके नीचे से
बहती है फेनोज्ज्वल
नदी रिवाजों की—
नदी
जिसके उस तट से
आती आवाज है
सफलता के बाजों की।

मुझे स्वप्न मे बताया गया था
लक्ष्मी के नूपुरों की मीठी रुनकार मे
वीणा वीणावादिनि की
सुनायी नहीं देती है।
नूपुर के सुर सुनकर सरस्वती
पुर तजकर वापस चल देती है।

शपथ से कह सकता हूँ—
अभी तुम जहाँ भी हो, अच्छी हो,
अभावों के चक्रव्यूह
मे फसने से बची हो।

कालान्तर

सूना बरामदा वह गोल चौडा पत्थर का
अब भी वही होगा,
सामने का पेड वह पलाश का
फूलो से लदा होगा।

मालूम नही, अब उस मकान म कौन रहता है।
कोई मेरा जैसा लडका, कोई तुम्हारी जैसी लडकी ?
जगल मे घूम कर वापस घर लौटने पर
शायद वह भी तुम्हारी तरह
ताब के गमला के बीच लगे नीचे नल
के नीचे अपने दोना
पाँव चप्पल-समेत धोती हो।
क्या वह लडकी भी बस मे
स्कूल से लौटती होगी दुपहर ढले ?
क्या वह लडका भी बाट तकता होगा
खडे पलाश तले ?

यही सब सोचकर मैं वहाँ गया था,
इतने साल बाद भी दिल मेरा
घबराता बडा था!
घुसते ही जो देखा उससे धक्का लगा—
जहाँ था अपना बरामदेवाला मकान
वहाँ एक फाइव स्टार होटेल खडा था!

1981

कालान्तर

सूना बरामदा वह गोल चौड़ा पत्थर का
अब भी वहीं होगा,
सामने का पेड़ वह पलाश का
फूलों से लदा होगा।

मालूम नहीं, अब उस मकान में कौन रहता है।
कोई मेरा जैसा लड़का, कोई तुम्हारी जैसी लड़की ?
जंगल में घूम कर वापस घर लौटने पर
शायद वह भी तुम्हारी तरह
ताड़ के गमलों के बीच लगे नीचे नल
के नीचे अपने दोनों
पाँव चप्पल-समेत धोती हो।
क्या वह लड़की भी बस में
स्कूल से लौटती होगी दुपहर ढले ?
क्या वह लड़का भी बाट तकता होगा
खड़े पलाश तले ?

यही सब सोचकर मैं वहाँ गया था,
इतने साल बाद भी दिल मेरा
घबराता बड़ा था।
घुसते ही जो देखा उससे धक्का लगा—
जहाँ था अपना बरामदेवाला मकान
वहाँ एक फाइव स्टार होटेल खड़ा था।

1981

झील की स्मृति

पानी पर हर दोपहर
पत्थर तैराने को
झील के द्वीप पर हम दोनों मिलते थे।

तरा-तरा पत्थर जब खूब थकते थे
एक झुकी पृथ्वी पर आयी हुई डाल पर
खूब कूद कूद कर हँसते-उछलते थे।
नावें बना केले के पत्तों की
फूलों से उनको भर
तैरा हम देते थे झील की तरंगों पर।
चकमक बीन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे।

गुज़र गये मास, वर्ष,
उतर गये शोक-हर्ष काल के पार कहीं।
अब न वहाँ चकमक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारों ओर
लाल-लाल बजरी की बन गयी सड़क है।

1981

झील की स्मृति

पानी पर हर दोपहर
पत्थर तैराने को
झील के द्वीप पर हम दोनों मिलते थे।

तैरा-तैरा पत्थर जब खूब थकते थे
एक झुकी पृथ्वी पर आयी हुई डाल पर
खूब कूद-कूद कर हँसते-उछलते थे।
नावें बना केले के पत्तों की
फूलों से उनको भर
तैरा हम देते थे झील की तरंगों पर।
चकमक बीन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे।

गुज़र गये मास, वर्ष
उतर गये गोल-हृप घास के पार कहीं।
अब न वहाँ चकमक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारों ओर
लाल लाल बजरी की बन गयी सड़क है।

1981

कविता

अपने लड़कपन में
दूर नीले पहाड़ पर
सपने का एक दुर्ग मैंने बनाया था।
सफेद घोड़े पर जिसका एक कान काला था
मैं बैठा करता था,
आसपास कचनार-कुसुमों के कानन में
पवन सारे वन को सजग करता था,
घोड़े से उतरकर
ज़री के जूते पहन जब मैं वहाँ विचरता था।

सरसों के खेत के आसपास
मिट्टी की मेड़ पर भी सरसों के चार फूल
ऊपर उग आये थे,
महका महका पवन, ऊँचा लहँगा पहन
तोतों को भगाने को
चलाते हुए गोफन
देख तुम्हें, अटका मन।

घोड़े पर बिठा तुम्हें दुर्ग में लाया था।
तेज़ उड़ते घोड़े पर आगे तुम बैठी थीं
केशकलाप घना पीछे लहराया था।
केशों को तुम्हारे मुख पर से हटाकर
नाम जो पूछा था,
बहुत धीमे स्वर में तुमने
कविता बतलाया था।

झील की स्मृति

पानी पर हर दोपहर
पत्थर तैराने को
झील के द्वीप पर हम दोनों मिलते थे।

तैरा-तैरा पत्थर जब खूब थकते थे
एक झुकी पृथ्वी पर आयी हुई डाल पर
खूब कूद-कूद कर हँसते उछलते थे।
नावें बना केले के पत्तों की
फूलों से उनको भर
तैरा हम देते थे झील की तरंगों पर।
चकमक बीन कर, उनको रगड़कर
अग्नि प्रकट करते थे,
खूब खुश होते थे।

गुज़र गये मास, वर्ष,
उतर गये शोक-रूप काल के पार कहीं।
अब न वहाँ चकमक है
सब कुछ अलग है—
द्वीप के चारों ओर
लाल लाल बजरी की बन गयी सड़क है।

1981

बनाया एक शहर

मैंने सब सड़कें जमा की
प्यार की, नफरत की, लोभ की, द्वेष की
और तारकोल की शक्ल अहंकार की,
इधर की, उधर की,
और बनाया एक शहर,
जिसमें सब था,
ताकत थी, कमज़ोरी थी,
वफाई, बेवफाई थी,
मगर बाज़ार न था।

यहाँ किसी को कुछ भी छुपाना न पड़ता था,
प्यार करने पर बताना न पड़ता था,
मगर वहाँ खरीद फरोख्त नहीं थी,
क्रय कैसे करें कोई विक्रय ही नहीं था !
शत्रुओं का खतरा तो था, पर मित्रों से भय न था !
नारी प्यार करती थी पर मातत्व का आग्रह न था।
जब पुरुष प्यार करता था
तब बिना अधिकार के, आसक्ति के
लिखता था कविता, कहानी, कथा।

गरज कि ग़रज़ नहीं किसी को किसी की थी।
जैसी भी जिसकी भी होती थी ज़िन्दगी
वैसी ही उसको ले वह कल्पना से सजाता था,
वास्तविक तथ्यों को कल्पना से शुद्ध कर
यथार्थ बनाता था।

19

अगर कभी ऐसा हो

अस्पताल की सुबह सी उदास
ज़िंदगी यदि हो जाये,
जैसे किसी बच्चे की नयी गेंद
फूलबाग में खो जाये।
ढूंढना असंभव हो
क्योंकि रात हो जाए,
मान लो कभी ऐसी बात हो जाए।

सड़कें सुनसान हों,
लौटते हुए लोगों को अपने घर न मिलें,
सड़क के किनारों की ऊँची इमारतों की
खिड़कियाँ बन्द हों,
कभी-कभी ख़ामोशी में सुनसान सड़कों से
टैक्सियाँ निकलती हों।
सिर्फ़ कुछ मोमबत्तियाँ
बुझने से पहले मोम की चट्टान
बनने को पिघलती हों,
ऐसी यदि स्थितियाँ कभी हों।

तब उसके नाम को ज़ोर से पुकार कर
जिसका पता तेरे हाथ में जो ख़त है
उस पर लिखा है,
और जिसके इलाक़े में तू है
पर जो न अभी तक दिखा है।

1983

शहसवार

भरी जवानी मे मैं घोड़े पर से गिरा।

तब तर्क की अस्थियाँ मज़बूत नहीं हुई थी,
सिर्फ नम मास था स्वप्न का,
मैं तुम्हारी नज़र की सडक से
प्यार के सागर की ओर जा रहा था,
जहाँ रस्मो की चट्टानें थी,
रिवाजो के कगार थे,
और बुद्धिमान समझदार हमारे परिवार थे।

हड्डियाँ जो टूटी अभी तक जुडी नही,
मार जो अन्दर लगी अभी तक भरी नही,
कल्पना का घोडा उदास
मेरे आसपास घूमकर
हमदर्दी जता रहा है,
मानो बता रहा है—
पहले भी लोग गिरे हैं,
आगे भी लोग गिरेंगे,
मगर किसे गुमान था—
इतनी कम उम्र मे आप
घोडे पर चढेंगे।

दावत की समाप्ति

त खत्म होने के पहले ही
दावत खत्म हो गयी।

त से अजनबी आ गये,
ा तो बहुत था, पर सब खा गये—
सब अपने बुलाये हुए लोग बैठे
त खत्म हो गयी।

हाने खा लिया था
पर हाथ फेरते कहकहे लगाने लगे,
थ मिलान लगे,
र घनियाने लगे—
हर के फटीचर भी, अब रईसों की तरह
ावत जमाने लगे।'

ो अपने थे उन्होंने
ान म आकर कहा—
'बलिहारी, आपका मजमा अच्छा रहा!
हम तो सिर्फ आपके प्रेम मे आये थे
राज दावत का मुश्किल था मामला!
अगर अनिमन्त्रित जन
भी करें पेटभर भोजन,
दावत तो वही है,
बिन खाये भी उससे तुष्ट होते सज्जन!"

1983

सर्चलाइट

अब यह मोटर मिट्टी है,
मगर कीमती हैं इसके कुछ हिस्से।
दुःख है कि यह अब चल नहीं सकती,
आपको मैं घर तक पहुँचा नहीं सकता।
लेकिन एक विनय है
इकार मत कीजिएगा—
उपहार देता हूँ आपको सर्चलाइट का,
और उसके साथ बैटरी भी,
कृपया ले जाइए, यह चीजें हैं आपकी।

कभी हम सफर म इधर-उधर जाते थे,
सफर म और लोग भी हमारे साथ आते थे,
आप यह भुला दें।
बैटरी औ सर्चलाइट ले जाकर
आप अपनी मोटर म लगा दें।
और शुभकामना लें—

अनजाने वनो मे, विपदा के दिनो मे
रोशन होता रहे आगे का रास्ता,
और सफर चला करे मुश्किलें तराशता

लडका और घोडा

बचपन मे सवारी को जो घोडा आता था
घोडेवाले ने वह एक तांगेवाले को बेच दिया।

उसके छह साल बाद
पानीभरे धान के खेतो के बीच से,
लोहे के लम्बे पुलो पर चीखते
डिब्बे म रेल के
होस्टेल से लौटकर
खोजता ढूढता पहुँचा तांगेवाले के अस्तबल,
घास, लीद, चमडा, और
अल्यूमीनियम के जूठे बर्तन,—
और खडा था घोडा हिनहिनाता प्यार से
गम साँस छोडता, धुधले प्रसन्न नयन।

उसकी साँस गले पर मैंने महसूस की,
उसने गर्दन मेरे कन्धे पर रख दी,
उसके आँसू मेरी पीठ पर गिरे गरम,
और मैं खडा रहा।
तांगेवाले ने कहा—
आपको पहचानता है।

मैं वसे ही खडा रहा—
मुझे ऐसा लगा
जसे एक घोडा मालवे के किसी कस्बे के बाजार में
कही किसी अनजानी राह पर गिरकर सो रहा है,
और वह लडका जो उस पर बैठता था
उसके पास खडा रो रहा है।

1983

माँ

माँ तो एक हृदय है
सहस्रो शरीरो म जो सचल है,
मूर्तिमान गगाजल है।

माँ,
कही रोटी सेंक रही है, कही आचल से शिशु को ढक
पहरा दे रही है,
कही अपने बेटे के किसी बेघर दोस्त को
खाना परोस रही है!
कही डाट रही है, कही प्रोत्साहन दे रही है,
कही पराजित शिथिल शरीर को
बाँहो मे उठाकर खडा कर रही है!
कही सबका पीछे कर
पुलिस की गोली के सामने खडी है,
कही भारत माता बन मुक्तकेशा मुकुट पहन
किये है ध्वजा धारण।

गर्भ मे जो रखे, जन्मे,
वह ही केवल मा नही है!
अनायास पहुँचे हुए, भूख से झुके हुए
रास्ते पर रुके हुए को आश्रय देती है,
उसके ही कन्धे पर चढ़े हुए बच्चे जब
उसके कद पर व्यग्य करते हैं
वह हँस देती है—
देह नही, व्यक्ति नही, ममता नही, शक्ति नही,
माँ तो शुद्ध हृदय है!
उसमे से निकल कर, उसमे जग विलय है।

मुद्रक हरिकृष्ण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32

जन्म	11 जुलाई, 1928, इन्दौर (मध्य प्रदेश)।
शिक्षा	सेण्ट स्टीफेन्स कालेज, दिल्ली अंग्रेजी मे एम० ए०।
वर्तमान काम	बम्बई के सिद्धार्थ कालेज आ आर्ट्स एण्ड साइन्स मे अंग्र विभाग के अध्यक्ष।
प्रकाशित कृतियां	सिक्स माडर्न इंगलिश पोएट 1973 धीमी सासें (उपन्यास 1973, गुलाबी अंधेरा (दीर्घ 1976, लौटो सिन्दबाद (क संग्रह) 1978 अमलतास (कविता संग्रह) 1984,
	समकालीन अंग्रेजी कविता पर अंग्रेजी में अनेक महत्व लेख।
सम्पादन	सिद्ध (वार्षिक), अंग्रेजी रिसर्च जर्नल, पिछले पन्द्र से। पोयट्री फ्राम बाम्बे (कालिक) भारतीय कवित अंग्रेजी अनुवाद। इसमें अ प्राय तीन अंक प्रकाशित
प्रकाश्य	सिंधुदुर्ग (निबंध-संग्रह) चार 'सप्तक' एक विवेच (दीर्घ निबंध)
पता	चन्दन निवास, कुर्ला रोड, (पूर्व), बम्बई-400069